खुसरो पाती प्रेम की, बिरला बाँचे कोय

गायत्री सिंह*

''संसार में जो कुछ है, सब इश्क का जलवा है। आग इश्क की गर्मी है,
हवा इश्क की बेचैनी है, पानी इश्क की रफ्तार है, मौत इश्क
की बेहोशी है,रात इश्क की नींद है, दिन इश्क का त्याग है,
जिंदगी इश्क की होशियारी है,
नेकी इश्क की कुरबत है, गुनाह इश्क की दूरी है।''

इश्क के बारे में इतना सब–कुछ एक छात्र ने अपनी उत्तर–पुस्तिका में लिखा था, जिसे जाँचते समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय की रिटायर्ड प्रोफेसर, प्रो0 आशा गुप्ता ने पढ़ी और अपनी डायरी में इस विचित्र प्रसंग को नोट कर लिया था। बातों–बातों में एक दिन यह बात उन्होने मुझसे भी शेयर की। सोचने की बात यह है कि जिस उम्र के इश्क या प्रेम को गम्भीरता से नहीं लिया जाता, उसने इतनी गम्भीर और व्यापक बातें लिखी। वास्तव में प्रेम ऐसा विषय है, भाव है, अनुभव है, जिसे सभी अपने जीवन में महसूस करते हैं। इसके बारे में बात करते हैं, इसकी चाहना करते हैं। परन्तु कभी यह पूरा नहीं पड़ता। इसका न भाव मिटता है न अभाव ही। प्रेम के परिभाषा की जद में लाने की कोशिश सभी ने की, आम इंसान की अपनी नजर है, विद्वानों, साहित्यकारों का अपना नजरिया। परन्तु सभी अपनी परिभाषा में अपूर्णता ही महसूस करते हैं। ऐसा क्या है प्रेम में, जो अभिव्यक्त नहीं हो पाता? खुसरो कहते हैं :–

खुसरो पाती प्रेम की, बिरला बाँचे कोय।
वेद पुरान पोथी पढ़े, प्रेम बिना का होय।।

वे 'प्रेम' को ऐसी 'पाती' बताते हैं, जिसे वाचना सभी के वश की बात नहीं। इसे विरला ही जान सकता है। वे वेद, पुरान, पोथी आदि के ज्ञान को प्रेम बिना व्यर्थ मानते हैं। कबीरदास भी कुछ इसी तरह का विचार अपने निम्नलिखित दोहों में अभिव्यक्त करते हैं–

''पढ़ि–पढ़ि के पत्थर भया, लिखि–लिखि भया जु ईंट।
कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एकौ छींट ।।
पोथी पढ़ि–पढि जगमुआ, पण्डित भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होई।।''[1]

बड़ा–बड़ा ज्ञानी अगर 'प्रेम' करना नहीं जानता, किसी से प्रेम नहीं करता, तो उसका ज्ञान व्यर्थ है। ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि से है। बुद्धि की प्राधान्यता हृदयविहीनता की कमी कभी पूरी नहीं कर सकती। खुसरो 'प्रेम' को एक विचित्र

***अतिथि प्रवक्ता यूइंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद**

दरिया बताते हैं, तो बिहारी भी कुछ इसी तरह के भाव प्रकट करते हैं।

खुसरो दरिया प्रेम का, उलटी वा की धार।
जो उबरो सो डूब गया, जो डूबा सो पार।। (अमीर खुसरो)
तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग।। (बिहारी)

खुसरों के लिए प्रेम एक ऐसा दरिया है, जिसकी धार उलटी है। इसमें जो तैरकर यानी ऊपर–ऊपर पार कर लेता है, वह अन्त में डूब जाता है, परन्तु जो इसमें डूबता है, वह पार हो जाता है। बिहारी कहते हैं कि वीणा की झंकार कविता का रस, मधुर राग और प्रीति के रस में जो पूरी तरह से डूब जाते हैं वे तो इस संसार सागर से पार चले जाते हैं। परन्तु जो इन रसों में नहीं डूबा, वह अन्ततः डूब जाता है।

रज्जब का मानना है कि प्रेम में कोई भेदभाव नहीं रहता। प्रेम सभी को एक दृष्टि से देखता है। उसके लिए अमीरी–गरीबी मायने नहीं रखती। वे कहते है कि 'प्रेम' एक ऐसा घर है जिसमें सेवक और स्वामी एक साथ आ सकते हैं साथ–साथ रह सकते हैं, सेवक और स्वामी के लिए प्रेम में कोई अन्तर नहीं आता।

''प्रेम प्रीति हित नेह कूँ, रज्जव दुविधा नाहिं।
सेवक स्वामी एक हैं, आये इस घर माहिं।। 30।।[2]

कबीर भी प्रेम में कोई विभाजन नहीं मानते, परन्तु 'प्रेम' के लिए योग्यता निर्धारित करते हैं, जो सभी के लिए एक जैसी है।

''प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा–परजा जेहि रूचे, सिर दे सो ले जाय।।''[3]

'प्रेम' को न घर में पैदा किया जा सकता है, न वह बाजार में बिकता ही है। ''प्रेम' स्वतः पैदा होता है, परन्तु इसकी प्राप्ति तभी संभव है, जब 'अहं' का नाश हो जाय। 'अहं' की समाप्ति ही प्रेम प्राप्ति की प्राथमिक शर्त है। मलूकदास का कहना है कि प्रेम को अभिव्यक्त करना जरूरी नहीं। जो हृदय में है, वह स्वतः ही प्रेम को जान लेता है।

''जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि–कहि समुझाव।
अन्तरजामी जानि हैं, अंतरगत का भाव।।''[4]

प्रिय तक 'प्रेम' का पहुँचना ही पर्याप्त नहीं। कबीर कहते हैं–

''नैना भीतर आव तू, ज्यों ही नैन झपेऊं।
ना मैं देखूं और कूँ, ना तुझ देखन देऊ।''[5]

यहाँ प्रिय के लिए आमंत्रण है। प्रेम में प्रिय को देखना बहुत भाता है। पर साथ ही वह यह भी चाहता है कि उसके सिवा प्रिय को कोई और न देखे। प्रेम में ''प्रेमी'' पर एकाधिकार की भावना आती है।..... जब प्रेम का अंकुर जन्म ले लेता है तो यह अपने–आप विकसित नहीं होता। कहने का आशय यही है कि ''प्रेम'' हो जाना प्रेम के लिए पर्याप्त नहीं है। इसे बनाये रखने के लिये या बढ़ाने के लिए जतन करना

पड़ता है। ''रहिमन विलास'' में इस विषय पर एक रोचक प्रसंग आता है–

नवाब खानखानाँ के एक कर्मचारी ने अपने विवाह के लिए कुछ दिन की छुट्टी ली थी, पर छुट्टी से अधिक दिन बीत गए थे। नौकरी पर चलते समय वह बड़े असमंजस में था कि नवाब साहब देर के लिए न जाने क्या दण्ड दें। उसकी स्त्री ने उसकी चिंता का कारण जानकार कागज पर निम्नलिखित एक बरवै लिखकर पति को दिया कि नवाब साहब के दरबार में जायँ, तब उन्हें दे दे। बरवै यों है–

प्रीति–रीति कौ बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीज्यो मुरझि न जाय।।''[6]

(अर्थात प्रीत का बिरवा तो लगा दिया है, लेकिन समय रहते ही इसे सींचने की सुधि भी लेना कि कहीं ये मुरझा न जाय।)

रहीम प्रेम को ऐसा नाजुक धागा बताते हैं, जो ध्यान चाहता है, समर्पण चाहता है, विश्वास चाहता है। अगर किसी वजह से यह धागा टूट गया, तो लाख प्रयत्न करो, मगर यह जुड़ता नहीं, अगर जुड़ा भी तो गांठ पड़ जाती है। प्रेम के पथ पर चलना आसान नहीं है। इस पर चलने वाले को लगातार सतर्क रहना पड़ता है। अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहना पड़ता है। प्रेम में सजगता भी जरूरी है, क्योंकि एक बार प्रेमपथ से जो विचलित हुआ, वह छूटता ही जाता है। जब बोधा यह कहते हैं कि :–

प्रेम को पंथ कराल महा, तरवारि की धार पे छावनो है'' तो जैसे इसी बात की पुष्टि करते हैं। तलवार की धार पर चलना जैसे स्वयं को आहत करते जाना, इसके बावजूद भी संयम और सजगता बनाये रखना। यह कोई आम पथ नहीं है, जिस पर सभी चल सके। इस राह चलने के लिए स्वयं को कष्ट भुगतने के लिए तैयार रखना पड़ता है। सब्र बनाये रखना होता है। साधना की तरह प्रेम को जीना होता है, तब कहीं जाकर प्रेम पराकाष्ठा पर पहुंचता है और फल प्राप्ति होती है। इससे भी ऊँची बात तुलसीदास कहते हैं।

तुलसीदास तो ईश्वर का पता ही ''प्रेम' बताते हैं। प्रेम ही पथ है, प्रेम ही मंजिल, प्रेम ही साधना है, प्रेम ही साध्य। प्रेम ही प्रारम्भ है, प्रेम ही पराकाष्ठा। प्रेम ही तो ईश्वर है। ईश्वर ही प्रेम है। जब वह रामचरित मानस में लिखते है कि –

'हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रकट होंहि मैं जाना। (तुलसी)

तो यही कहते है कि ईश्वर का पता चाहिए तो प्रेम करिये, प्रेम के माध्यम से ही ईश्वर को जाना जा सकता है, या प्राप्त किया जा सकता है। सही बात तो यह है कि जब प्रेम होता है, तो प्रिय के सारे क्रियाकलाप अच्छे लगते हैं। उसके सानिध्य में बैठना, उसकी बातें करना, उसके बारे में सोचना, उसके लिए कुछ करना, उसकी प्रशंसा करना या दूसरों के मुख से उसकी प्रशंसा सुनना आदि–आदि। कहने का आशय यह है कि प्रेम में प्रिय ही ईश्वर तुल्य हो जाता है, जिसमें प्रेमी हर वक्त डूबा रहता है। प्रेम के माध्यम से ईश्वर को प्रकट किया

जा सकता है। तुलसीदास रामचरितमानस में इन पंक्तियों के माध्यम से यही बात कहते हैं। जायसी भी प्रेम बिना मनुष्य जीवन का कोई मूल्य या उपलब्धि नहीं मानते। वे कहते हैं –

मानुष प्रेम भयऊ बैकुण्ठी, नाहि त काह छार एक मूंठी। (जायसी)

(प्रेम ही मनुष्य जीवन को दिव्य बनाता है, प्रेम से ही बैकुण्ठ की प्राप्ति भी संभव है, अन्यथा जीवन एक मूठी राख के सिवा है ही क्या?)

पंचतत्व से बना यह शरीर तो मात्र ढांचा है, प्रेम उसमें गति या स्पन्दन लाता है, दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति शरीर पोषण के लिए आवश्यक है, परन्तु प्रेम भीतरी भूख है, आत्मा की प्यास है, जिसके प्राप्ति बिना मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जाता है। इसका दूसरा आशय यह भी हो सकता है कि बिना किसी कुण्ठा यानी कुण्ठारहित जीवन तभी संभव है, जब प्रेम भरपूर हो। प्रेम की तृप्ति मनुष्य जीवन के किसी भी अभाव या हीनता को पूरा कर देती है। जायसी के कहने का उद्देश्य प्रेम की सार्थकता को अभिव्यक्त करना था, तथा सभी भावों में 'प्रेम' की महत्ता को प्रतिपादित भी करना था। वास्तव में पशु–पक्षी हो या मनुष्य 'प्रेमे' की भाषा सभी जानते हैं, परन्तु प्रेम की महत्ता से सभी वाकिफ नहीं होते।

'प्रेम आज भी सभी की आवश्यकता है, सभी इसकी आकांक्षा भी करते हैं, पर कोई प्रयत्न नहीं करना चाहता। भौतिक संसाधनों की प्राप्त तथा भौतिक सुखों की चाहना, आज के मनुष्य को अपने आकर्षण में बांधे हुए है, इसलिए सभी अपने आप में व्यस्त और गुम रहते हैं। दूसरों की बात शायद ही जेहन में आती है। इसलिए यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि विज्ञान युग भले ही संसाधनों और सामानों की उपलब्धि सहज कर दे, परन्तु मानवीय मूल्यों और भावनाओं की न तो वह निर्मित कर सकता है, न पूर्ति ही। वह 'प्रेम' की क्षुधा नहीं शान्त कर सकता। वर्तमान मनुष्य को 'प्रेम' के स्वरूप अहमियत, और व्यापकता को समझना चाहिए और भौतिक वस्तुओं के प्रति मोह त्याग कर आन्तरिक गुणों की तरफ ध्यान देना चाहिए। 'प्रेम' एक ऐसी वस्तु है, जिसे किसी को दिया जाय तो कई गुना होकर वापस लौटती है और जिसे 'प्रेम' मिल जाय, फिर उसे कोई अभाव नहीं सताता।

संदर्भ ग्रन्थ–

1. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, आवृत्ति 2000 पृष्ठ संख्या–145
2. सन्तकाव्य, पृष्ठ संख्या–377
3. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, आवृत्ति 2000 पृष्ठ संख्या–129
4. सन्त काव्य, पृष्ठ संख्या–360
5. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजमल प्रकाशन, आवृत्ति 2000 पृष्ठ संख्या–153
6. रहिमन विलास, सं0 ब्रजरलदास, नेशनल प्रेस प्रयाग, संवत 2016, पृष्ठ संख्या–55